अध्याय : 3

योग के ग्रन्थ (द्वितीय)

योग उपनिषद

इस इकाई में सम्मिलित उपनिषद् और पाठ्क्रम के अनुसार उनकी विषय वस्तु इस प्रकार हैः–

क्र. सं.	उपनिषद्	विषय वस्तु
1.	श्वेताश्वेतरोपनिषद्	ध्यानयोग और इसके लिए उपयुक्त स्थान, प्राणायाम, योग सिद्धि के पूर्व लक्षण, योग सिद्धि का महत्व, परमेश्वर का स्वरूप, भगवत् और मोक्ष की प्राप्ति आदि।
2.	योगकुण्डल्युपनिषद्	प्राणायाम सिद्धि के उपाय, प्राणायाम भेद और ब्रह्म प्राप्ति के उपाय।
3.	योगचूडामण्युपनिषद्	योग के 6 अंग, उनका क्रम और प्रत्येक के फल।
4.	त्रिषिखब्राह्मणोपनिषद्	अष्टांगयोग, कर्मयोग और ज्ञानयोग का वर्णन
5.	योगतत्त्वोपनिषद्	योग के चार (मंत्र, लय, हठ और राज) प्रकार और इनकी अवस्थाएं, आहार, दिनचर्या और योग सिद्धि के प्रारम्भिक लक्षण।
6.	ध्यानबिन्दूपनिषद्	योग के 6 अंग, ध्यानयोग का महत्व, प्रणव का स्वरूप, ध्यानयोग की विधि, नादानुसंधान द्वारा आत्मदर्षन।
7.	नादबिन्दूपनिषद्	हंसविद्या और उसके विभिन्न अंग–उपांगों का वर्णन, ओमकार की 12 मात्राएं, नाद के प्रकार, नादानुसंधान का स्वरूप, मनोलय की स्थिति।
8.	योगराजोपनिषद्	योग के चार (मंत्र, लय, हठ और राज) प्रकार, नौ चक्र और इनमें ध्यान की विधि तथा लाभ।

1. श्वेताश्वतरोपनिषद्

इस उपनिषद् के द्वितीय अध्याय का षुभारम्भ मन तथा बुद्धि को परमात्मा में लगाकर इन्द्रियों को पार्थिव षरीर से ऊपर उठाकर उसमें दिव्य अग्नि को स्थापित करने की प्रार्थना सविता देवता से करते हुए की गयी है। इसी अध्याय में ध्यानयोग की विधि का वर्णन करते हुए कहा गया हैः–

त्रिरुन्नतं स्थाप्य समं शरीरं हृदीन्द्रियाणि मनसा संनिरुध्य।

ब्रह्मोडुपेन प्रतरेत विद्वान्स्त्रोतांसि सर्वाणि भयावहानि।। *श्वेताश्वतरोपनिषद्* 2/8

अर्थात् विद्वान पुरुष को सिर, ग्रीवा और वक्षस्थल इन तीनों को स्थिर और सीधा रखना चाहिए। दृढ़ता पूर्वक सम्पूर्ण इन्द्रियों को मानसिक पुरुषार्थ करके अन्तःकरण में समाविष्ट कर लें और ऊँकार रूपी नौका के द्वारा सम्पूर्ण भयावह प्रवाहों को पार कर जाए।

इस प्रकार इस उपनिषद् में ध्यान की अवस्था में शरीर के प्रमुख अंग सिर, ग्रीवा और वक्षस्थल को सीधा रखने का विशेष परामर्श दिया गया है। शारीरिक अवस्था के साथ मानसिक पुरुषार्थ के महत्व को भी दृढ़ता पूर्वक स्थापित किया गया है, जिसके क्रम में इन्द्रियों को उनके विषयों से हटाकर अन्तःकरण में

समाविष्ट करने की बात कही है। इस प्रकार उपरोक्त दोनों शारीरिक और मानसिक अवस्थाओं में 'ऊँकार' रूपी नौका से दुःख रूपी भयानक प्रवाहों को पार कर लेना चाहिए।

इस उपनिषद् में प्राणायाम के अभ्यास को सम्पन्न करने के साथ साधक को आहार–विहार की सभी क्रियाओं को भी विधिवत् सम्पन्न करने का परामर्श दिया गया है। यथा–

प्राणान्प्रपीडयेह स युक्तचेष्टः क्षीणे प्राणे नासिकयोच्छूसीत।
दुष्टाश्र्वयुक्तमिव वाहमेनं विद्वान्मनो धारयेताप्रमत्तः।। *श्वेताश्वतरोपनिषद्* 2/9

अर्थात् आहार–विहार की समस्त क्रियाओं को सम्पन्न करते हुए प्राणायाम का अभ्यास विद्वान पुरुष को करना चाहिए और जब प्राण क्षीण हो जाय तब उसे नासा रन्ध्रों से बाहर कर देना चाहिए। प्राणायाम के अभ्यास द्वारा मन बहुत ही सावधानी पूर्वक वश में रखना चाहिए। जिस प्रकार कुशल सारथी दुष्ट अश्वों से युक्त रथ को कुशलता पूर्वक अत्यन्त जागरूक होकर लक्ष्य की ओर ले जाता है वैसे ही विद्वान पुरुष को भी इस मन को सदैव वश में रखना चाहिए।

उपयुक्त स्थान : श्वेताश्वतरोपनिषद् में योग साधना के लिए उपयुक्त स्थान में विषय में परामर्श देते हुए कहा गया हैः

समे शुचौ शर्करावह्निवालुकाविवर्जिते शब्दजलाश्रयादिभिः।
मनोनुकूले न तु चक्षुपीडने गुहानिवाताश्रयणे प्रयोजयेत्।। *श्वेताश्वतरोपनिषद्* 2/10

अर्थात् साधक को समतल और पवित्र भूमि में कंकड़, अग्नि तथा बालू आदि से रहित, जल के आश्रय और शब्द आदि की दृष्टि से मनोनुकूल, नेत्रों को कष्ट न देने वाले, गुहा आदि आश्रय स्थल में ध्यान के लिए मन को अभ्यास में लगाना चाहिए।

योग सिद्धि के लक्षण :

नीहारधूमार्कानलानिलानां खद्योतविद्युत्स्फटिकशशीनाम्।
एतानि रूपाणि पुरःसराणि ब्रह्मण्यभिव्यक्तिकराणि योगे।। *श्वेताश्वतरोपनिषद्* 2/11

अर्थात् योग साधना के प्रारम्भ काल में साधक के सन्मुख ब्रह्म की अभिव्यक्ति के स्वरूप में सर्व प्रथम कुहरा, धुआ, सूर्य, वायु, जुगनू, विद्युत, स्फटिकमणि, चन्द्रमा आदि प्रकट होते हैं।

पंचमहाभूतों (पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश) के सम्यक उत्थान होने पर इनसे सम्बन्धित पंच योग विषयक गुणों की सिद्धि हो जाती है, तदोपरान्त जिस साधक को योगाग्निमय शरीर की प्राप्त हो जाता है, तो ऐसे साधक को रोग, वृद्धावस्था और असामयिक मृत्यु की प्राप्ति नहीं होती है।

शरीर की स्थूलता में कमी, नीरोग, विषयों में अनासक्ति, शरीर में क्रान्ति–तेजस्विता, स्वर की मधुरता, शुभ गन्ध की अनुभूति, मल–मूत्र का कम होते जाना ये सभी योग के प्रथम लक्षण है।

योग सिद्धि का महत्व :

यथैव बिम्बं मृदयोपलिप्तं तेजोमयं भ्राजते तत्युधान्तम्।

तद्वात्मतत्त्वं प्रसमीक्ष्य देही एकः कृतार्थो भवते वीतशोकः।। *श्वेताश्वतरोपनिषद्* 2/14

अतः जैसे मिट्टी से मलिन रत्न या आभूषण शुद्ध होकर चमकने लगते है उसी प्रकार देहधारी जीव आत्मतत्व का साक्षात्कार करके षोक आदि से मुक्त होकर कृतकृत्य हो जाता है।

इस प्रकार आत्मतत्व का साक्षात्कार करके साधक आत्मतत्व के द्वारा ब्रह्म तत्व का साक्षात्कार कर लेता है। इसके बाद वह अजन्मा, निश्चल, सम्पूर्ण तत्वों से पवित्र उस परमात्मा कर ज्ञान प्राप्त करके सभी विकारों के बन्धनों से मुक्त हो जाता है। वही परमात्मा सम्पूर्ण दिशाओं में सम्व्याप्त सर्व प्रथम हिरण्यगर्भरूप में प्रकट हुआ था। वही सम्पूर्ण विश्वब्रह्माण्ड में सम्व्याप्त है।

परमेश्वर का स्वरूप और उसकी महिमा : श्वेताश्वतरोपनिषद् के अनुसार इस लोक का सृष्टि चक्र ब्रह्म रूप या ब्रह्म चक्र है, जो परमात्मा की महिमा से घूम रहा है। यह परमात्मा ज्ञानस्वरूप है। काल का भी काल है। सर्व गुण सम्पन्न और सब कुछ जानने वाला है। उसके अनुशासन द्वारा ही यह सम्पूर्ण कर्म चक्र घूम रहा है। पृथ्वी आदि पंचमहाभूतों का चक्र भी परमात्मा के द्वारा ही क्रियाशील है। मनुष्य को सदैव ऐसा ही चिन्तन करते रहना चाहिए।

इस उपनिषद् के अनुसार उस परमात्मा ने ही चेतन तत्व का जड़ तत्व से संयोग कराकर जगत की रचना की है। इस उपनिषद् में प्रकृति को विभिन्न उपाधियों से वर्णित किया गया है। जैसे :

अविद्या : 1

धर्म–अधर्म : 2

सत्, रज और तम : 3

मन, बुद्धि, अहंकार और पंचमहाभूत : 8

समस्त कर्म प्रकृति के तीनों गुणों से संव्याप्त है जो मनुष्य कर्मों को भावों सहित परमात्मा को अर्पित कर देता है, उसमें उन कर्मों का अभाव तथा सम्पूर्ण कर्म भी नष्ट हो जाते हैं। ऐसा होने पर वह परमात्मा को प्राप्त हो जाता है। वह परमात्मा आदि पुरुष ही पुरुष और प्रकृति के संयोग का निमित्त कारण है। यह तीनों काल और सोलह कलाओं से परे है। यह परमात्मा अपने अन्तःकरण में अधिष्ठित तथा संसार के रूप में प्रकट है। मनुष्य को इसी परमात्मा की उपासना करनी चाहिए। यह जगत परमात्मा के द्वारा प्रपंच में प्रवृत्ति होने पर भी वह परमात्मा वृक्ष रूपी चक्र काल और आकार आदि से पृथक है। वह परमात्मा धर्म विस्तारक पाप नाशक और एश्वर्य के स्वामी है। जो साधक उन्हें जान लेता है वह आत्मा में स्थिति उस

विश्वाधार विराट परमात्मा तथा उसके अमृत स्वरूप को प्राप्त हो जाता है। वह परमात्मदेव निराकार जिनके शरीर और इन्द्रियाँ नहीं है उनके समान या उनसे बड़ा अन्य कोई नहीं है। उनकी पराशक्ति विविध प्रकार की हैं। उनका स्वभावजन्य ज्ञान और बल क्रिया से मुक्त है। इस जगत में उनका कोई स्वाामी नहीं है। वह परमात्मा स्त्री, पुरुष या नपुंसक लिंग में नहीं आता। कोई उसका शासक नहीं। वही सबका कारण और जीवों का अधिपति है। कोई उसका उत्पत्ति कारक या अधिपति नहीं है। जैसे मकड़ी स्वयं से उत्पन्न तन्तुओं द्वारा अपने को आवृत्त कर लेती है उसी प्रकार उस परमदेव ने अपनी प्रधान शक्ति प्रकृति स्वयं को आवृत्त कर लिया है। वहीं स्मपूर्ण प्राणियों में स्थित है। वह सर्व व्यापी समस्त सभी प्राणियों की अन्तरात्मा, सबके कर्मों का अधीश्वर, सबमें विद्यमान, सभी का साक्षी, पूर्ण चैतन्य, विशुद्ध और निर्गुण रूप है। हृदयप्रदेश में स्थित उस परमात्मा को जो पुरुष अनुभव रूप में देख लेते हैं, उनको ही शाश्वत सुख की प्राप्ति होती है।

वह परमात्मा नित्यों में नित्य, चेतनों में चेतन और एक अकेला ही सभी प्राणियों को उनके कर्मों का भोग प्रदान करता है। इस परमात्मा को सांख्य एवं योग अर्थात् ज्ञानयोग और कर्मयोग के द्वारा जाना जा सकता है। जो साधक सांख्य–योग के द्वारा उसे जान लेता है, वह सभी बन्धनों से मुक्त हो जाता है। इस लोक में एक ही हंस अर्थात् परमात्मा है। उसके प्रकाशित होने से ही सूर्य, सभी तारें, चन्द्रमा आदि प्रकाशित होते हैं। उससे ही सम्पूर्ण ब्रह्मण्ड प्रकाशित है। इस परमात्मा को जानकर मृत्यु रूपी बन्धन से मुक्ति होती है। वह परमात्मा ही ज्ञान स्वरूप सम्पूर्ण विश्व का रचनाकार, जगत उत्पत्ति का केन्द्र पुरुष और प्रकृति का अधिपति सम्पूर्ण गुणों का नियन्ता, संसार चक्र के बन्धन स्थिति के मुक्ति का कारण है।

इस उपनिषद् के अनुसार उस परमात्मा ने सर्व प्रथम ब्रह्म को उत्पन्न कर उन्हें वेद का ज्ञान प्रदान किया। इस परमात्मा की शरण को ग्रहण करना चाहिए। दुःखों की अत्यान्तिक निवृत्ति का एक मात्र मार्ग परमात्म तत्त्व का ज्ञान है। यदि कोई मनुष्य चमड़े की भाँति आकाश को लपेट सके तो वह परमात्म तत्त्व को जाने बिना दुःखों से मुक्त हो सकता है। परन्तु यह असम्भव है।

इस प्रकार श्वेताश्वर ऋषि ने तप के प्रभाव और परमात्मा की कृपा से उस ब्रह्म को जाना और आश्रम के सुपात्रों को इस ज्ञान का उपदेश दिया। इस ब्रह्म ज्ञान का उपदेश रागादि से युक्त अन्तःकरण और जो अपने शिष्य या पुत्रों न हो उन्हें नहीं करना चाहिए। जिस साधक में उस परमात्मा के प्रति अत्यन्त भक्ति है तथा गुरू में भी उतनी ही भक्ति है, उस आत्मा के हृदय में ही ये गूढ़ ज्ञान प्रकाशित होते हैं।